# अध्याय–3
# बौद्ध एवं जैन दर्शन

## (1) बौद्ध दर्शन

**बौद्ध दर्शन का परिचय**–बौद्ध दर्शन एक नास्तिक तथा अनीश्वरवादी दर्शन है।बौद्ध धर्म तथा दर्शन के जनक महात्मा बुद्ध माने जाते है। प्राचीन काल के अन्य उपदेशकों की भॉति महात्मा बुद्ध ने भी अपने धर्म का प्रचार मौखिक रूप से ही किया। उनके शिष्यों ने भी बहुत काल तक उनके उपदेशों का मौखिक ही प्रचार किया। बुद्ध के निजी उपदेशों का जो कुछ भी ज्ञान हमें आजकल प्राप्त हो रहा है वह त्रिपिटकों के माध्यम से ही हुआ है।

**त्रिपिटक**– पिटक का शाब्दिक अर्थ होता है 'पेटी'। बौद्ध दर्शन के नियमों और उपदेशों का संकलन तीन भागों में है, जिन्हें संयुक्त रूप से त्रिपिटक कहते हैं।

**विनयपिटक**– बौद्ध दर्शन और संघ के नियमों का संकलन।

**सूक्तपिटक**– बुद्ध के उपदेशों और विभिन्न वार्तालापों का संकलन।

**अभिधम्मपिटक**– बौद्ध दर्शन के गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्तों में निम्नलिखित शामिल है–

### बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्य –

महात्मा बुद्ध के सभी उपदेश चार आर्य सत्यों में ही निहित है।ये चार आर्य सत्य बौद्ध धर्म के सार है।महात्मा बुद्ध की समस्त प्रकार की शिक्षाऍ किसी न किसी रूप में इन चार आर्य सत्यों से प्रभावित हुई है। इनके अभाव में बौद्ध धर्म तथा दर्शन की कल्पना कर पाना भी कठिन है। महात्मा बुद्ध ने इन चार प्रकार के आर्यसत्यों के महत्व को स्वयं 'मज्झिमनिकाय' में इस प्रकार से स्पष्ट किया था– 'चार आर्यसत्यों से ही अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शान्ति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण सम्भव है।' चार आर्यसत्यों पर जोर देना महात्मा बुद्ध के व्यवहारवाद का प्रमाण कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन में स्वीकार्य ये चार आर्य सत्य है–

**प्रथम आर्यसत्य**–दुःख है या दुःख की सत्ता है। महात्मा बुद्ध मानते है कि प्राणीमात्र का जीवन दुःख, भय, रोग, कष्ट और मृत्यु से परिपूर्ण है। वे कहते है–जन्म लेना, बूढा होना, मरना, शोक करना, रोना, पीटना, रोग, चिन्ता, परेशानी और इच्छित वस्तु का नहीं मिलना ये सब दुःखमय है। वे कहते है कि संसार दुख का समुन्द्र है। दुःखों के कारण मनुष्य जितने आँसू बहाता है उतना महासागरों में जल भी नहीं है।

महात्मा बुद्ध के अनुसार सांसारिक सुख भी वास्तविक सुख नहीं है। वे क्षणिक होते है।उनके नष्ट हो जाने पर दुःख ही होता है। ऐसे सुखों के साथ बराबर यह चिन्ता लगी रहती है कि कहीं वे नष्ट न हो जाएं । इस तरह के अनेक दुःखद परिणाम है जिसके कारण सांसारिक सुख वास्तविक सुख नहीं समझे जा सकते है। स्पष्ट है कि जिन्हें हम सुख मानते है वे अन्ततोगत्वा दुःख ही देते है। सभी वस्तुएँ जो उत्पन्न होती है वे दुःख, अनित्य और अनात्म रूप है। इनकी आसक्ति से ही दुःख मिलता है।

**द्वितीय आर्यसत्य**–दुःख का कारण है या दुःख समुदाय – बौद्ध दर्शन में दुःख के कारणों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की गयी है, जिसे दुःख–समुदाय या द्वादश निदान कहा गया है। इस श्रृंखला की विभिन्न कड़ियाँ एक–दूसरे से जुड़ी हुई है, जिसमें किसी एक कड़ी के उपस्थित होने पर दूसरी कड़ी भी उपस्थित होती है। इसी कारण इसे 'प्रत्यीत्यसमुत्पाद' कहते हैं, जिसका अर्थ है –एक के नष्ट होने पर दूसरा उत्पन्न होता है। दुःख के कारणों की ये बारह कडियां है–अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति तथा जरा–मरण।

**तृतीय आर्य सत्य–दुःख का अन्त सम्भव है** – बौद्ध दर्शन में दुःखों के अन्त की अवस्था को निर्वाण कहा गया है। बौद्ध दर्शन के अनुसार निर्वाण ही जीवन का परम लक्ष्य, सर्वोच्च मूल्य और परम प्राप्तव्य है। यह परम शांति और परम् सुख की अवस्था है। इसकी प्राप्ति से भव का निरोध हो जाता है इस प्रकार यह पुनर्जन्म को रोकने वाला है।

निर्वाण के सम्बन्ध में बौद्ध दर्शन के एक अन्य दृष्टिकोण यह भी है कि निर्वाण वर्णनातीत अवस्था है। यूनान के राजा मिलिन्द अथवा मिनेंडर बौद्ध भिक्षु नागसेन के शिष्य हुए थे। नागसेन ने विभिन्न उपमाओं की सहायता से राजा मिलिन्द को निर्वाण का अवर्ण्य स्वरूप बतलाने की कोशिश की थी। नागसेन ने कहा–'निर्वाण समुन्द्र की तरह गहरा, पर्वत की तरह ऊँचा और मधु की तरह मधुर है।' इसके साथ ही नागसेन ने यह भी कहा था कि जिसको निर्वाण का कोई भी अनुभव नहीं है। उन्हें इन उपमाओं के द्वारा भी निर्वाण की कुछ भी धारणा नहीं हो सकती है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ होता है – 'अग्नि का बुझ जाना' जिसके दो भेद है –

**उपाधि शेष निर्वाण**– निर्वाण की इस अवस्था में जीवन

का अन्त नहीं होता है बल्कि ज्ञान प्राप्त व्यक्ति अन्य लोगों को भी निर्वाण प्राप्ति के लिये प्रेरित करता है।

**अनुपाधिशेष निर्वाण–** इसमें जीवन का अन्त हो जाता है और जन्म–मरण का चक्र भी समाप्त हो जाता है।

बौद्ध दर्शन की एक शाखा 'हीनयान' केवल स्वयं के मोक्ष को लक्ष्य घोषित करती है, जिसे 'अर्हत' कहते हैं जबकि 'महायान' शाखा अन्य लोगों के मोक्ष को भी अपना लक्ष्य बनाती है, जिसे 'बोधिसत्व' कहते हैं।

**चतुर्थ आर्यसत्य–दुःख निरोधी गामिनी प्रतिपद–** चतुर्थ आर्यसत्य दुःखों को दूर करने के उपाय भूत मार्ग का विवेचन करता है। इसे हीनोपाय भी कहते है। बुद्ध केवल दुःखों के कारण का ही विवेचन नहीं करते है अपितु वे उनसे मुक्त होने का मार्ग भी बताते है। इन मार्गों का अनुसरण करके व्यक्ति परम शांति निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। बौद्ध दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के आठ मार्ग बताये गये हैं, जिन्हें 'आष्टांगिक मार्ग' कहते हैं। ये हैं –

1. सम्यक दृष्टि
2. सम्यक संकल्प
3. सम्यक वाक
4. सम्यक कर्मान्त
5. सम्यक आजीव
6. सम्यक व्यायाम
7. सम्यक स्मृति
8. सम्यक समाधि

बौद्ध दर्शन के इस अष्टांगिक मार्ग को बाद में पुःन तीन भागों प्रज्ञा, शील तथा समाधि में बांटा गया है।

**2. प्रतीत्य समुत्पाद–** भगवान बुद्ध ने दुःख समुदाय के प्रश्न का समाधान प्रतीत्य समुत्पाद के माध्यम से किया तथा इसकी अनेक प्रकार की व्याख्या की गयी है। इसे मध्यम धर्म अथवा मध्यम प्रतिपदा भी कहा जाता है। पालि भाषा में इसे पटिच्चसमुत्पाद भी कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– एक नष्ट होने पर दूसरा उत्पन्न होता है।

**कारण–**कार्य श्रृखला रूप प्रतीत्यसमुत्पाद द्वादश चक्र रूप है जिसे भवचक्र, संसार चक्र, जन्म–मरण चक्र और धर्मचक्र भी कहा जाता है। यह माना जाता है कि प्रतीत्यसमुत्पाद बौद्ध दर्शन का कार्य–कारण सिद्धान्त है किन्तु वास्तव में यह सापेक्ष कारण–कार्यवाद है, मात्र कार्यकारण भाव नहीं है। यह सिद्धान्त सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन की रीढ कहलाता है। प्रतीत्य समुत्पाद द्वितीय आर्य सत्य के रूप में दुःख के कारणों को भी स्पष्ट करता है जो कि निम्नलिखित अनुसार है–

**अविद्या–** अनित्य को नित्य और अयथार्थ को यथार्थ समझ लेना ही अविद्या है। इस प्रकार अविद्या को अज्ञान का पर्यायवाची कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन में दुखों को अनुभूत न करना, दुःख के कारणों को न समझना और उसको दूर करने के उपाय अथवा मार्ग का अनुसरण न करना ही अज्ञान है। इस प्रकार हम कह सकते है कि चार आर्य सत्यों को नहीं जानना अविद्या है। अविद्या संस्कार का प्रत्यय है।

**संस्कार–** अविद्या के कारण कोई व्यक्ति जो भी भला–बुरा कार्य करता है, उसे संस्कार कहते हैं। जैसे संस्कार होते हैं वैसा ही उनका फल होता है। यह एक ऐसी संकल्प शक्ति है जो कि नवीन अस्तित्व को उत्पन्न करती हैं। जो कुशल और अकुशल कायिक, वाचिक और मानसिक चेतनाएँ पुनर्जन्म का कारण बनती है वे संस्कार कहलाती है। संस्कार से मुख्य रूप से चैतसिक संकल्प अथवा मानसिक वासनाएं अभिप्रेत है। इस अर्थ में संस्कार कर्म का ही सूक्ष्म मानसिक रूप है जबकि विस्तृत रूप में जीवन के भौतिक तथा मानसिक तत्वों का नाम ही संस्कार है। बौद्ध दर्शन में संस्कार के निम्नलिखित तीन भेद किए गये है– कार्य संस्कार, मनःसंस्कार तथा वाक् संस्कार।

**विज्ञान–** विज्ञान वे चित्धाराएं है जो पूर्व जन्म में सत्व कर्म करता है, उनके विपाक स्वरूप प्रकट होती है। शरीर, संवेदना, इन्द्रियां आदि के नष्ट होने पर भी विज्ञान शेष रहता है। यही विज्ञान माता के गर्भ में शिशु का प्रवेश विज्ञान करवाता है।

**नामरूप–** माता के गर्भ में शिशु का जो स्वरूप निर्धारित होता है, उसे ही नामरूप कहते हैं, जिसमें– संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और वेदना नाम को प्रकट करते हैं और पृथ्वी, जल, तेज और वायु रूप को निर्धारित करते हैं।

इनमें से प्रत्यक्ष ज्ञान आदि संज्ञा है, मानसिक प्रवृतियां तथा इच्छाएं संस्कार है, बुद्धि–चेतना–मन इत्यादि विज्ञान है और भौतिक तत्व रूप है।

**षडायतन–** शिशु की पाँच इन्द्रियों और मन का संयोग षडायतन कहलाता है। शिशु नामरूप तथा षडायतन से युक्त होकर जन्म लेता है। आँख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा तथा मन ये छह इन्द्रियाँ माता के उदर से बाहर आने पर सत्व प्रयुक्त करता है।

षडायतन में पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ मन आयतन भी शामिल है। आयतन से अभिप्राय उत्पत्ति द्वार से लिया गया है। इसमें मन आयतन के अतिरिक्त पाँच ज्ञानेन्द्रियों के चक्षु आयतन, श्रोत आयतन, घ्राण आयतन, रसना आयतन और शेष शरीर को काय आयतन के रूप में निर्देशित किया जाता है।

**स्पर्श–** छः प्रकार की इन्द्रियों और उनके विषयों से उत्पन्न अनुभव स्पर्श कहलाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन इन भेदों से यह छह प्रकार का होता है।

**वेदना–** स्पर्श का मन पर पड़ने वाला प्रभाव वेदना है।

वेदना का अर्थ अनुभव करना है। बाह्य जगत की वस्तुओं के स्पर्श से जो प्रथम प्रभाव मन पर उत्पन्न होता है वह वेदना कहलाता है। वेदना के तीन भेद किए गये–सुखा वेदना, दुःखा वेदना और असुखा–दुखा वेदना।

**तृष्णा**– जगत के अनुभवों को बार–बार भोगने की इच्छा 'तृष्णा' है। यह सब दुखों का मूल कारण है। तृष्णा के निम्नलिखित तीन भेद किए गये हैं–

1. काम तृष्णा–इन्द्रिय सुखों की इच्छा
2. भव तृष्णा–जीवन के लिए
3. विभव तृष्णा–वैभव की इच्छा

**उपादान**– जगत की वस्तुओं के प्रति राग और मोह का भाव उपादान है। उपादान उग्र तृष्णा का वह रूप है जिससे मोह उत्पन्न होता है। इसे आसक्ति भी कहा जाता है। संयुक्तनिकाय में उपादान के चार प्रकार बताये गये है। ये हैं–कामोपदान, दृष्टिउपादान, शीलव्रतोपादान और आत्मवादोपादान। इनमें कामोपादान इन्द्रिय सुख को विषय करता है। मिथ्या सिद्धान्तों में विश्वास करना दृष्टि उपादान है। असद् आचरण में संलग्न होना शीलव्रतोपादान है तथा नित्य आत्मा को मानना आत्मावादोपादान है।

**भव**– पुनर्जन्म की इच्छा 'भव' है।

**जाति**– पुनर्जन्म हो जाना 'जाति' है।

**जरा–मरण** – पुनर्जन्म के कारण दुःखों को भोगना 'जरा मरण' है। बुढापा तथा मृत्यु इन दो अवस्थाओं को जरा–मरण कहा जाता है। संसार में जन्म के कारण सत्व दुःख, रोग, निराशा, कष्ट, बुढ़ापा और अन्त में मृत्यु को प्राप्त करता है।

ये बारह अंग जीव के भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों से सम्बद्ध है। इनमें से

1. अविद्या और संस्कार पूर्व भव अर्थात भूतकाल से सम्बन्धित है।
2. जाति और जरा–मरण भविष्य के भव से अर्थात भविष्यकाल से सम्बन्धित है।
3. इसके अतिरिक्त शेष आठ अंग यथा– विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान और भव वर्तमान जीवन से सम्बन्धित है।

इनमें से प्रत्येक अंग की प्रतीत्य समुत्पति का निहितार्थ यह है कि हर अंग पूर्व अंग पर आश्रित है और पूर्व अंग के बिना दूसरे की विद्यमानता सम्भव नहीं है।

### (2) जैन दर्शन–

जैन दर्शन का परिचय–बौद्ध धर्म तथा दर्शन का समकालीन जैन दर्शन भी भारतीय नास्तिक तथा अनीश्वरवादी दर्शनों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जैन शब्द की उत्पत्ति 'जिन्' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है इन्द्रियों को जीतने वाला। इस प्रकार हम कह सकते है कि जिन वे व्यक्ति है जिन्होंने अपने मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली। मन तथा कामनाओं पर विजय प्राप्त कर वे हमेशा के लिए जीवन–मृत्यु के चक्र से मुक्त हो गये है यानी उन्होने कैवल्य अथवा मोक्ष की प्राप्ति कर ली है।

जैन दर्शन सृष्टि निर्माता के रूप में ईश्वर को नहीं मानता है अपितु वे अपने धर्म के प्रवर्तकों जिन्हें वे तीर्थंकर कहते है की ईश्वर के रूप में उपासना करते है। तीर्थंकर का शाब्दिक अर्थ है– संसार रूपी समुद्र से बाहर ले जाने वाला। जैन दर्शन में अब तक 24 तीर्थंकर हुए है जिनमें प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव, पार्श्वनाथ तैबीसवे तथा महावीर स्वामी चौबीसवें तथा अंतिम तीर्थंकर हुए है।

जैन दर्शन एक नास्तिक दर्शन है क्योंकि यह वेदों को प्रमाण रूप में नहीं मानता है। जैन जिस साहित्य को प्रमाण रूप से स्वीकार करते हैं, वह है–आगम साहित्य, जिसके दो भेद हैं– 12 अंग और 12 उपांग।

जैन धर्म तथा दर्शन दो भागों में विभक्त है–श्वेताम्बर तथा दिगम्बर। इनमें से श्वेताम्बर सफेद वस्त्र धारण करते है जबकि दिगम्बर चारों दिशाओं को ही अपना वस्त्र मानकर नग्न रहते है। जैन दर्शन के साहित्यक ग्रन्थों में निम्नलिखित प्रमुख है–

- कुन्दकुन्दाचार्य–नियमसार, पंचास्तिकायसार, समयसार तथा प्रवचनसार
- उमास्वामी–तत्वार्थसूत्र, तत्वार्थधिगम
- समन्तभद्र आचार्य–आप्तमीमांसा
- सिद्धसेन दिवाकर–न्यायावतार, तत्वार्थटीका

जैन दर्शन के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्तों में निम्नलिखित शामिल है–

**स्यादवाद**– जैन दर्शन की तत्त्वमीमांसा का सबसें महत्वपूर्ण सिद्धान्त स्यादवाद है जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु एक दृष्टिकोण विशेष से ही सत्य है। जैन दर्शन कहता है कि कोई भी ज्ञान पूर्ण सत्य नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु के अनन्त गुण होते हैं। मनुष्य एक समय में वस्तु के एक गुण का ज्ञान ही प्राप्त कर सकता है। वस्तु के अनंत गुणों का ज्ञान केवल मुक्त व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है। साधारण मनुष्यों का ज्ञान अपूर्ण तथा आंशिक होता है। स्यादवाद ज्ञान की सापेक्षता का सिद्धान्त है। स्यादवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में सात दृष्टिकोण निम्नलिखित अनुसार हो सकते है–

**स्यात् अस्ति**– यह प्रथम परामर्श है जिसके अनुसार यदि यह कहा जाये कि स्यात् घट अस्ति तो इसका अर्थ होगा

कि किसी विशेष देश, काल और प्रसंग में स्यात् घट का अस्तित्व है।

**स्यात् नास्ति–** यह अभावात्मक परामर्श है। इस द्वितीय क्रम में स्यात् घट नहीं है में घट का नास्तित्व पदार्थों के द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से है क्योंकि घट में एवं पर पदार्थों में भेद की प्रतीति स्पष्ट है।

**स्यादस्ति च् नास्ति च्–**इस तीसरे प्रकार के दृष्टिकोण के अनुसार किसी देश–काल में उस वस्तु की सत्ता हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। जैसे– घट किसी देश एवं काल में एक विशेष रूप में हो भी सकता है तथा पट् रूप में नहीं भी हो सकता ।

**स्यात् अव्यक्तव्यम्–** चतुर्थ दृष्टि से द्रव्य अवक्तव्यम् भी हो सकता है, क्योंकि एक ही काल में वस्तु का अस्तित्व तथा अभाव दोनों तो फिर शब्दों में उसको अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार से यदि किसी परामर्श में परस्पर विरोधी गुणों के सम्बन्ध में एक साथ विचार करना पड़ता है तो उसके विषय में स्यात अव्यक्तव्यम् का प्रयोग करना पडता है।

**स्यात् अस्ति च् अव्यक्तव्यम्–**अर्थात कोई वस्तु एक समय विशेष में हो भी सकती है तथा अव्यक्तव्य भी रह सकती है। यह परामर्श पहले तथा चौथे परामर्श को जोड़ने से उत्पन्न होता है।

**स्यात् नास्ति च् अव्यक्तव्य च्–** इसका अर्थ है कि एक दृष्टि से वस्तु एक समय में नहीं भी हो सकती तथा अव्यक्तव्य भी हो सकती है। उदाहरण के लिए घट, पट की अपेक्षा से अभाव रूप है तथापि स्वरूप एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से वह अव्यक्तव्य है।

**स्यात् अस्ति च् नास्ति च् अव्यक्तव्यम च्–** इसका अर्थ है कि एक दृष्टि से वस्तु हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती तथा अव्यक्व्यम् भी हो सकती है।

स्यादवाद के इस सिद्धान्त को कुछ लोग संदेहवाद मानते है परन्तु स्यादवाद को संदेहवाद कहना भ्रामक माना जायेगा। सन्देहवाद वह सिद्धान्त है जो कि ज्ञान की सम्भावना में संदेह करते है जबकि जैन इसके विपरीत ज्ञान की सत्यता में विश्वास करता है। जैन दर्शन पूर्ण ज्ञान की सम्भावना पर भी विश्वास करता है तथा साधारण ज्ञान की सम्भावना पर भी वह सन्देह नहीं करता है। अतः स्यादवाद को सन्देहवाद नहीं कहा जा सकता है। सन्देहवाद के अतिरिक्त स्यादवाद पर निम्नलिखित आक्षेप भी लगाये जाते है–

1. बौद्ध और वेदान्तियों ने स्याद्वाद को विरोधात्मक सिद्धान्त कहा है। उनके अनुसार एक ही वस्तु एक ही समय में 'है' और 'नहीं' नहीं हो सकती है। जैनों ने विरोधात्मक गुणों को एक ही साथ समन्वित किया है। शंकराचार्य ने स्याद्वाद को पागलों का प्रलाप कहा है।
2. वेदान्त दर्शन में स्याद्वाद की आलोचना करते हुए कहा गया है कि कोई भी सिद्धान्त केवल सम्भावना पर आधारित नहीं हो सकता है। यदि सभी वस्तुएं सम्भव मात्र है तो स्याद्वाद स्वयं सम्भावना मात्र हो जाता है।
3. स्यादवाद् के अनुसार हमारे सभी ज्ञान सापेक्ष हैं। जैन दर्शन केवल सापेक्ष को मानते है निरपेक्ष को नहीं स्वीकार करते है। परन्तु सभी सापेक्ष, निरपेक्ष पर आधारित है निरपेक्ष के अभाव में स्यादवाद् के सातों परामर्श बिखरे रहते है और उनका समन्वय नहीं हो पाता है। इस प्रकार से स्यादवाद् का सिद्धान्त स्वयं स्यादवाद के लिए घातक सिद्ध हो जाता है।
4. जैन स्वयं स्यादवाद का खण्डन कर देते है जब वे स्यादवाद कि मीमांसा करते हुए स्यादवाद को भूलकर केवल अपने ही पक्ष को एकमात्र सत्य मान बैठते है। इस प्रकार से स्यादवाद का पालन वे स्वयं नहीं करते है।
5. स्यादवाद के सात परामर्शों में बाद के तीन परामर्श पहले चार को केवल दोहराने का प्रयास करते है। कुछ आलोचकों का मानना है कि इस प्रकार सात के स्थान पर सौ परामर्श हो सकते है।
6. जैन दर्शन केवल ज्ञान में विश्वास करता है। केवल ज्ञान को सत्य, विरोधरहित और संशयरहित माना गया है। जैनों ने इसे सभी ज्ञानों में उच्च कोटि का ज्ञान माना है। परन्तु आलोचकों का माना हैं कि केवल ज्ञान में विश्वास कर जैन निरपेक्ष ज्ञान में विश्वास करने लग जाते है जिसके फलस्वरूप स्याद्वाद जो कि सापेक्षता का सिद्धान्त है, अंसगत हो जाता है।

**अनेकान्तवाद–** एक वस्तु को कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। जितने व्यक्ति इस जगत में है उतने ही भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण किसी वस्तु को देखने के लिए अपनाएं जा सकते है तथा इन दृष्टिकोणों में से प्रत्येक दृष्टिकोण में आंशिक सत्य निहित है किन्तु यह अनेकान्तवादी दृष्टिकोण यह मानता है कि मनुष्यों में विवाद तथा मतभेद का कारण वास्तव में केवल अपने ही दृष्टिकोण को एकमात्र सत्य मान लेना है।

जैन दार्शनिक अपने अनेकान्तवाद को हाथी तथा सात अन्धों के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते है। इस उदाहरण के अनुसार जंगल में जा रहे सात अन्धों को एक हाथी जंगल में मिलता है जिसके विभिन्न अंगों को छूकर इनसे प्राप्त अनुभव के आधार पर प्रत्येक अन्धा हाथी का अलग–अलग विवेचन प्रस्तुत करता है। वास्तव में प्रत्येक द्वारा प्रस्तुत विवेचन में सत्यता का कुछ न कुछ अवश्य है किन्तु उनमें वास्तविक विवाद तब उत्पन्न होता है, जब प्रत्येक अन्धा केवल अपने ही पक्ष को सत्य मानता

है तथा अन्य लोगों के पक्ष को असत्य मानता हैं।

**अनेकान्तवाद तथा नयवाद**– नय का शाब्दिक अर्थ है–दृष्टिकोण। इस सिद्धान्त के अनुसार एक ही वस्तु को कम से कम सात दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। यही नयवाद कहलाता है। नयवाद में स्वीकार्य ये सात दृष्टिकोण अथवा नय है–

**नैगम नय**– धर्म और धर्मी दोनों को बारी–बारी ग्रहण करना नैगम नय का कार्य है। जैसे जीव कहने से ज्ञानादि गुण गौण होकर के जीवद्रव्य ही मुख्य रूप से विवक्षित होता है और ज्ञानवान जीव कहने पर ज्ञान गुण मुख्य हो जाता है और जीवद्रव्य गौण।

**संग्रह नय**– संग्रह नय में केवल सामान्य अथवा अभेद को ही ज्ञान का विषय बनाया जाता है।

**व्यवहार नय**– व्यवहार नय केवल विशेष अथवा भेद को ही ज्ञान का विषय स्वीकार करता है।

**ऋजुसूत्रनय**– यह नय केवल वर्तमान पर्याय को ही स्वीकार करता है। कोई व्यक्ति पूर्व जन्म में राजा था अथवा भविष्य के जन्म में वह किसी रियासत का राजकुमार होगा इन भावों के स्थान पर वर्तमान में वह क्या है? केवल इसी अर्थ को ग्रहण करने वाला दृष्टिकोण ही ऋजुसूत्रनय कहलाता है।

**शब्द नय**– काल, कारक, लिंग अथवा संख्या के भेद से शब्द भेद होने पर उसके भिन्न–भिन्न अर्थों को एक समान पर्यायवाची मानकर ग्रहण करने वाला दृष्टिकोण ही शब्द नय है। शब्द नय में यह माना जाता है कि एक शब्द के पर्यायवाची एक ही अर्थ का बोध करवाते है। जैसे– इन्द्र, शुक्र और पुरन्दर तीनों शब्दों का अर्थ एक ही है।

**समभिरूढ नय**– समभिरूढ नय प्रत्येक पर्यायवाची शब्दों का भी अर्थ भेद मानता है। जिस प्रकार एक अर्थ अनेक शब्दों का वाच्य नहीं हो सकता है। उसी प्रकार एक शब्द अनेक अर्थो का वाचक नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए समभिरूढ नय के अनुसार इन्द्र, शुक्र और पुरन्दर आदि इन पर्यायवाची शब्दों का अर्थ एक नहीं है बल्कि इसमें भी अर्थभेद पाया जाता है। जैसे इन्द्र शब्द का अर्थ है– आन्नद करने वाला, शुक्र का अर्थ है शक्तिशाली और पुरन्दर का अर्थ है नगरों को उजाडने वाला।

**एवंम्भूत नय**– इस नय के अनुसार किसी शब्द का जो अर्थ तथा उसमें जो क्रिया निहीत है उसके अनुसार होने पर ही उस शब्द का प्रयोग करना चाहिए। जैसे देवराज को उसी समय इन्द्र कहना चाहिए जब वह आन्नद प्राप्त करता हो। ठीक इसी प्रकार किसी व्यक्ति को तभी न्यायाधीश कहना चाहिए जब वह न्यायाधीश की वेशभूषा पहनकर न्याय के आसन पर बैठकर के न्याय का कार्य करे अन्यथा परिस्थितियों में उसे न्यायाधीश नहीं कहा जा सकता है।

इन सात प्रकार के नय में से प्रथम चार नय अर्थ नय माने जाते है जबकि अन्तिम तीन शब्द नय माने जाते है। इसका कारण यह है कि प्रथम चार प्रकार के नय में अर्थ पर अधिक बल है जबकि अन्तिम तीन का सम्बन्ध अर्थ से अधिक है।

## (3) बौद्ध तथा जैन दर्शन के नैतिक सिद्धान्त

### अष्टांगिक मार्ग–मध्यम प्रतिपदा–

बौद्ध दर्शन में मोक्ष की प्राप्ति के साधन के रूप में आठ प्रकार के उपायों का उल्लेख मिलता है जिन्हे कि संयुक्त रूप से अष्टांगिक मार्ग कहते है। यह अष्टांगिक मार्ग ही मध्यम प्रतिपदा कहलाता हे क्योंकि यह समस्त प्रकार की अतियों का निषेध कहलाता है।

**1. सम्यक् दृष्टि**– वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप में जानना और चार आर्य सत्यों का चिन्तन सम्यक दृष्टि कहलाता है। अभिधम्मपिटक के विभंग ग्रन्थ में चार आर्य सत्यों के ज्ञान को ही सम्यक् दृष्टि कहा गया है। सम्यक अर्थात भली प्रकार से, यथार्थ रीति से, उचित प्रकार से, कुशलतापूर्वक और दृष्टि अर्थात दर्शन। तात्पर्य यह है कि कुशलतापूर्वक यथार्थ रीति से दुःख, दुःख समुदाय, दुःख निरोध मार्ग तथा दुःखनिरोधप्रतिपद को देखना सम्यक दृष्टि है।

**2. सम्यक् संकल्प**– सम्यक दृष्टि से जाने गये विचारों के अनुसार कार्य करने का दृढ़ संकल्प करना। सम्यक संकल्प का अर्थ है मन, वचन और कर्म से संसार त्याग और द्रोह, घृणा, द्वेष आदि एवं हिंसा से विरत हो जाना।

**3. सम्यक् वाक**– यथार्थ और सत्य वचन बोलना जो कि हितकर भी हो उसे ही सम्यक वाक् कहा जाता है। झूठ, चुगली, कठोर वाणी, व्यर्थ की बकवास आदि से व्यक्ति को बचाना ही सम्यक वाक् का उद्देश्य है।

**4. सम्यक् कर्मान्त**– हितकर कार्यों का आचरण ही सम्यक कर्मान्त है। उन सभी कर्मो का परित्याग करना चाहिए जो बुरे और असत्य है जैसे हिंसा, चोरी, लोभ, कामुकता, आराम, ऐश्वर्य भोग, मिथ्याचार आदि।

**5. सम्यक् आजीव**– अपनी जीविका चलाने के लिये नैतिकता से युक्त व्यवसाय को अपनाना सम्यक आजीव है। इसका अर्थ होता है शुद्ध और उचित उपायों से जीविकोपार्जन करना। इसका निषेधात्मक रूप से यही अथ्र है कि पशुवध, शराब, माँस, विष आदि का व्यापार नहीं करना तथा दबाव, रिश्वत, जालसाजी, लूटपाट, धोखा आदि बुरे कार्यों के द्वारा जीवनयापन नहीं करना ही सम्यक आजीव है।

**6. सम्यक् व्यायाम**– जो अच्छे विचार हृदय में प्रविष्ट हो गये हैं, उनका अस्तित्व बचाये रखना और बुरे विचारों का हृदय में प्रवेश रोकना ही सम्यक व्यायाम है। इस प्रकार सम्यक

व्यायाम में निम्नलिखित शामिल है–

- शुभ विचारों का चिन्तन करना
- मन में समाविष्ट हो चुके अच्छे विचारों को सुरक्षित रखना
- बुरे विचारों को उत्पन्न नहीं होने देना
- जो बुरे विचार मन में प्रविष्ट हो चुके है उन्हें नष्ट करना

**7. सम्यक् स्मृति–** शरीर की अनित्यता को ध्यान में रखना ही सम्यक स्मृति है।

**8. सम्यक् समाधि–** समाधि अष्टांगिक मार्ग की चरम अवस्था है। मन या चित्त की एकाग्रता सम्यक समाधि है। सम्यक समाधि की चार अवस्थाएँ होती हैं –

**प्रथम अवस्था–** शान्त चित से चार आर्य सत्यों का चिन्तन करना

**द्वितीय अवस्था–** इस अवस्था में तर्क–वितर्क संदेह सब दूर हो जाते है।चार आर्य सत्यों के प्रति श्रद्धा बढ जाती है तथा चित में शांति और स्थिरता आती है।

**तृतीय अवस्था–** इस अवस्था में मन शांति और आनन्द के भाव से हटकर तटस्थता और उपेक्षा के भाव को लाता है।

**चतुर्थ अवस्था–** यह पूर्ण शान्ति की अवस्था हैं। इसमें सुख–दुख सब नष्ट हो जाते और सत्व निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

उपरोक्त आठ प्रकार के मार्गों को पुनः 3 भागों में बाँटा गया है –

**प्रज्ञा–** इसमें सम्यक दृष्टि एवं सम्यक संकल्प को शामिल किया जाता हैं

**शील–** इसमें सम्यक वाक्, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीव को शामिल किया जाता हैं

**समाधि–** इसमें सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि को शामिल किया जाता है।

**पंचमहाव्रत–** जैन ऋषिमुनियों द्वारा जिन कठोर नियमों का पालन किया जाता है, उन्हें ही पंचमहाव्रत कहते हैं। यह है– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य (जैन ऋषियों और मुनियों के लिये)। पंचमहाव्रतों का जो सरल रूप है और जिसका पालन जैन गृहस्थ कर सकते हैं, उन्हें 'अणुव्रत' कहते हैं। पंच महाव्रतों का विस्तारपूर्वक विवेचन निम्नलिखित अनुसार है–

**(अ) सत्य–** सत्य का शाब्दिक अर्थ है–असत्य का त्याग। सत्य का आदर्श है सुनृत अर्थात प्रिय एवं हितकारी सत्य बोलना चाहिए। किसी व्यक्ति द्वारा केवल मिथ्या वचनों का परित्याग ही नहीं करना चाहिए बल्कि मधुर वचनों का प्रयोग भी करना चाहिए। सत्य व्रत का पालन भी मन, वचन तथा कर्म से करना चाहिए।

**(ब) अंहिसा–** अहिंसा का अर्थ है हिंसा का त्याग। जैनों के मतानुसार जीव का निवास प्रत्येक द्रव्य में है। इसका निवास गतिशील के अतिरिक्त स्थावर द्रव्यों में जैसे पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल आदि में माना जाता है। अतः अहिसा का अर्थ है सभी प्रकार के जीवों की हिंसा का परित्याग। संन्यासी इस व्रत का पालन अधिक तत्परता से करते है किन्तु साधारण मनुष्य के लिए जैनों ने दो इन्द्रियों वाले जीवों तक कि हिंसा नहीं करने के आदेश दिये है।

अहिंसा केवल निषेधात्मक आचरण ही नहीं है बल्कि इसे भावात्मक आचरण भी कहा जा सकता है। अहिंसा का अर्थ केवल जीवों की हिंसा का त्याग ही नहीं है बल्कि उनके प्रति प्रेम का भाव भी व्यक्त करना इसमे शामिल है। अहिंसा का पालन मन, वचन और कर्म से किया जाना चाहिए। हिंसात्मक कार्यों के सम्बन्ध में सोचना तथा दूसरों को हिंसात्मक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना भी अहिंसा सिद्धान्त का उल्लघंन ही माना जायेगा। जैनों के अनुसार अहिंसा विचार जीव सम्बन्धी विचार की देन है। चूंकि सभी जीव समान है, इसीलिए किसी जीव कि हिंसा करना अधर्म है।

**(स) अस्तेय–** इसका अर्थ है चोरी का निषेध। जैन दर्शन के अनुसार जीवन का अस्तित्व धन पर निर्भर करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि धन के बिना मानव अपने जीवन को सुचारू रूप से निर्वाह नहीं कर पाता है। इसी कारण से जैनों ने धन को मानव का बाह्य जीवन कह कर पुकारा है। किसी व्यक्ति का धन का अपहरण करना उसके अपहरण करने के समान है। अतः चोरी का निषेध करना नैतिक अनुशासन कहा गया है।

**(द) अपरिग्रह–** अपरिग्रह का तात्पर्य है विषयासक्ति का त्याग। मनुष्य के बन्धन का कारण सांसारिक वस्तुओं से आसक्ति को ही कहा जा सकता है। अतः सांसारिक वस्तुओं से निर्लिप्तता अर्थात अपरिग्रह को आवश्यक माना गया है। सांसारिक विषयों में रूप, स्पर्श, गन्ध, स्वाद तथा शब्द आते है। इसीलिए अपरिग्रह का तात्पर्य रूप, रस, गन्ध, स्वाद तथा स्पर्श आदि इन्द्रियों के विषयों का परित्याग करना कहा जा सकता है।

**(य) ब्रहमचर्य–** ब्रहमचर्य का अर्थ है वासनाओं का त्याग करना। मानव अपनी वासनाओं तथा कामनाओं के वशीभूत होकर ऐसे कर्मो को प्रश्रय देता है जो पूर्णत अनैतिक होते है। ब्रहमचर्य का साधारणतः अर्थ इन्द्रियों पर रोक लगाना है परन्तु जैन ब्रहमचर्य का अर्थ सभी प्रकार की कामनाओं का परित्याग मानते है। मानसिक अथवा बाहय, लौकिक अथवा परलौकिक, स्वार्थ अथवा परार्थ सभी प्रकार की कामनाओं का पूर्ण परित्याग ही ब्रहमचर्य कहलाता है। ब्रहमचर्य का पालन मन, वचन तथा कर्म तीनों से करने का निर्देश दिया गया है।

उपरोक्त कर्मों को अपनाकर मानव मोक्षानुभूति के योग्य

हो जाता है। पंच महाव्रत सम्बन्धी यह मार्ग जैन दर्शन के सम्यक् चरित्र मार्ग का सबसे महत्वपूर्ण एवम प्रारम्भिक भाग है। पंच महाव्रत का पालन बौद्ध धर्म में भी हुआ है जहाँ इसे पंचशील नाम दिया गया है।

**त्रिरत्न–** जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन बताये गये हैं, जिन्हें त्रिरत्न कहते हैं। इन त्रिरत्नों में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र शामिल है। भारत के अधिकांश दर्शनों ने इनमें से मोक्ष के लिए किसी एक मार्ग को ही अधिक महत्व दिया है। कुछ दर्शनों ने मोक्ष प्राप्ति के लिए केवल सम्यक् दर्शन को तो कुछ ने केवल सम्यक ज्ञान को और कुछ ने केवल सम्यक चरित्र को महत्व प्रदान किया किन्तु जैन दर्शन ने समग्रतापूर्वक चिन्तन करते हुए तीनों को समान महत्व प्रदान कर इन्हे त्रिरत्न घोषित किया है।

**सम्यक् दर्शन–** जैन तीर्थंकरों में और जैन साहित्य अर्थात् 'आगम' में श्रद्धा रखना ही सम्यक दर्शन है। जैन दर्शन के अनुसार सत्य के प्रति श्रद्धा की भावना को रखना सम्यक् दर्शन कहा जाता है अर्थात् यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा का होना ही सम्यक् दर्शन कहलाता है। सम्यक दर्शन का अर्थ अन्धविश्वास एवं रूढिवादिता नहीं है बल्कि यह तो बौद्धिक विश्वास है।

**सम्यक् ज्ञान–** जीव और अजीव के भेद को जान पाना ही सम्यक् ज्ञान है। जीव और अजीव के अन्तर को न समझने के कारण ही बन्धन का प्रादुर्भाव होता है तथा इससे दूर रहने के लिए ज्ञान का होना आवश्यक है। यह ज्ञान संशयरहित तथा दोषरहित होता है। सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति में कुछ कर्म बाधक होते हैं जिन्हें नष्ट करना अनिवार्य है। कर्मों के पूर्ण विनाश के पश्चात ही सम्यक ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

**सम्यक् चरित्र–** नैतिक कार्यों को करना और अनैतिक कार्यों से बचना ही सम्यक चरित्र कहलाता है। सम्यक चरित्र के द्वारा जीव अपने कर्मों से मुक्त हो सकता है क्योंकि कर्म ही बन्धन एवं कष्ट का मूल कारण है। सम्यक् चरित्र के पालन से जीव अपने कर्मों से मुक्त हो जाता है। सम्यक चरित्र में निम्नलिखित शामिल है– पंच महाव्रत, पंच अणुव्रत, समिति, गुप्ति, अनुप्रेक्षा, परीषह और धर्म।

त्रिरत्नों के पालन से मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। इनके पालन से कर्मों का आस्त्रव बन्द हो जाता है तथा पुराने कर्मों का क्षय हो जाता है। इस प्रकार से जीव अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यही मोक्ष है। मोक्ष का अर्थ केवल दुःखों का विनाश मात्र नहीं है बल्कि आत्मा के अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति भी है।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

### वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. प्रतीत्य समुत्पाद के तत्व है–
   (अ) 10 (ब) 12
   (स) 8 (द) 16
2. निर्वाण का उल्लेख किस आर्य सत्य में है ?
   (अ) प्रथम आर्य सत्य में (ब) द्वितीय आर्यसत्य में
   (स) तृतीय आर्यसत्य में (द) चतुर्थ आर्यसत्य में
3. जैन दर्शन में स्वीकार्य पंच महाव्रत बौद्ध दर्शन में क्या कहलाते है–
   (अ) अष्टांगिक मार्ग (ब) अष्टांगिक योग
   (स) पंचशील (द) त्रिरत्न
4. त्रिरत्न में शामिल नहीं है–
   (अ) सम्यक दृष्टि (ब) सम्यक चरित्र
   (स) सम्यक ज्ञान (द) सम्यक स्मृति

### अति लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. त्रिपिटक क्या है?
2. प्रतीत्य समुत्पाद तथा द्वाद्वशनिदान किस आर्यसत्य का भाग है?
3. अविद्या क्या है?
4. निर्वाण का अर्थ क्या है?
5. अर्हत किसे कहते है?
6. बोधिसत्व का आदर्श बौद्ध धर्म की कौनसी शाखा द्वारा स्वीकार किया गया है?
7. जैन शब्द का अर्थ क्या है?
8. तीर्थकर से आप क्या समझते है?
9. जैन धर्म के प्रथम तथा अन्तिम तीर्थकर कौन थे?
10. जैन साहित्य क्या कहलाता है?
11. जैन धर्म के दो सम्प्रदाय कौनसे हैं?
12. त्रिरत्न के नाम बताइए?
13. अणुव्रत किसे कहते है?
14. गुप्ति से आप क्या समझते है?

### लघुत्तरात्मक प्रश्न–

1. त्रिपिटक का अर्थ बताते हुए इनका वर्णन कीजिए?
2. नामरूप से आप क्या समझते हैं?
3. बौद्ध दर्शन के अनुसार निर्वाण के भेदो को वर्णन कीजिए?

4. अष्टांगिक मार्ग के अवयवों का नाम लिखिए?
5. सम्यक् व्यायाम को समझाइए?
6. सम्यक् समाधि के स्तरों को समझाइए?
7. जैन दर्शन में समिति के अर्थ को बताते हुए इसके प्रमुख प्रकारों को समझाइये?
8. स्याद्वाद के सिद्धान्त को समझाइये?
9. अनेकान्तवाद से आप क्या समझते है?

**निबन्धात्मक प्रश्न–**

1. चार आर्य सत्यों का वर्णन कीजिए?
2. प्रतीत्य समुत्पाद को समझाइए ?
3. अष्टांगिक मार्ग का वर्णन कीजिए ?
4. जैन दर्शन में त्रिरत्नों का विस्तापूर्वक वर्णन कीजिए ?

**उतरमाला–**

(1)–(ब) (2)–(स) (3)–(स) (4)–(अ)